SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

राष्ट्रवाद और समाजवादः स्वामी विवेकानन्द

संतोष रजक, पीएच–डी., इतिहास विभाग
कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्टस एण्ड साइंस, पटना, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
संतोष रजक, पीएच–डी.
E-mail : swami.1919@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 17/03/2025
Revised on : 17/05/2025
Accepted on : 27/05/2025
Overall Similarity : 00% on 19/05/2025

शोध सार

राष्ट्र की अस्मिता, सुरक्षा एवं संप्रभुता का प्रश्न हो और हमारे अन्दर संवदेना न हो तो ऐसा जीवन व्यर्थ है। स्वामी विवेकानंद जो एक संवेदनशील व्यक्ति थे, उन्होंने देश के कोने–कोने का भ्रमण कर देश की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। स्वामी जी के अनुसार भारतवर्ष में वह प्रवाह धर्म है। इसलिए स्वामी जी देशवासियों को संबोधित करते हुए कहते है कि जो किया सो अच्छा है और सब और अच्छा करने का अवसर आया है। पाश्चात्य देशों का भ्रमण करते हुए स्वामी जी ने राष्ट्रवाद का जो परिचय दिया है वह सराहनीय है।

मुख्य शब्द

राष्ट्र, अस्मिता, सुरक्षा, संप्रभुता, स्वामी विवेकानंद.

स्वामी जी सम्पूर्ण भारत वर्ष का भ्रमण कर देश की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। देश के अविकसित क्षेत्रों एवं लोगों के सूखे हुए निराश चेहरों ने उन्हें विचलित कर दिया था। वह स्पष्ट देख रहे थे भारत माता एक विशेष जकडन में अपने भक्तों, अपने पुत्रों की ओर ताक रही थी। इस तरह स्वामी जी राष्ट्रवाद की भावना से ओत–प्रोत भारत माता की स्वतंत्रता हेतु प्रयत्नशील हुए। उनके अन्दर राष्ट्रवाद की भावना काफी बढ़ी हुई थी। इसका प्रमाण हमें उनके लेखों एवं भाषण से होता है।

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है स्वामी जी के अनुसार भारतवर्ष में वह प्रवाह धर्म है। इसलिए स्वामी जी देशवासियों को संबोधित करते हुए कहते है कि जो किया सो अच्छा है और अब और अच्छा करने का अवसर आया है। अपनी कार्य प्रणाली का परिचय देते हुए स्वामी जी – ''यह मेरी कार्य प्रणाली है हिंदूओं को यह दिखा देना कि उन्हें कुछ भी छोड़ना नहीं

पड़ेगा, केवल उन्हें ऋषियों द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलना होगा और सदियों की दासता के फलस्वरूप प्राप्त अपनी जड़ता को उखाड़ फेंकना होगा।''[1] हमें आगे बढ़ना ही चाहिए अपने स्वयं के भाव के अनुसार अपने स्वयं के पथ से स्वामी विवेकानंद तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप अर्थात समय की जो आवश्यकता थी जो माँग था उसके विपरीत वह देशवासियों को धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप से दीक्षित करते हुए उत्साहित करते है और जड़ताओं से निकलने का आह्वान करते हैं। स्वामी जी की ओजस्वी वाणी ने भारतवासियों के जीवन में उथलपुथल मचा दी। निर्भीक जनजागरण ने संगठित हो राष्ट्रवाद को नयी दिशा दी। उन्होंने भविष्य के भारत में अपना–अपना स्थान ग्रहण करने को आम जनता का आंह्वान किया– ''नया भारत निकल पड़े मोदी की दुकान से, भड़भूजे के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से निकल पड़े, झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।''[2]

स्वामी विवेकानंद निश्चित ही एक धार्मिक गुरू थे। वह हिन्दू धर्म उपदेशक थे, परंतु उनकी कार्यशैली कुछ अलग थी वह सब का साथ और सब का सम्मान चाहते थे। धर्म के संबंध में वे कहते है– ''मैं एक ऐसा धर्म चाहता हूँ जो हममें आत्मविश्वास और राष्ट्रीय स्वाभिमान का बोध जगा दे तथा हममें दीन–दुखियों को अन्न और शिक्षा देने की तथा हमारे चारों ओर फैले समस्त दुख कष्टों को दूर करने की शक्ति भर दे। यदि ईश्वर लाभ करना चाहते हो तो पहले मनुष्य की सेवा करो।''[3] वे कहते है – भगवान को किधर ढूँढते फिर रहे हो? क्या दीन, आर्त, घृणित, अस्पृश्य ये ही तुम्हारे देवता नहीं हैं? पहले इन्हीं की पूजा क्यों नहीं करते। वेदान्त की जन्मभूमि भारतवर्ष में साधारण जनता युग–युग से उपेक्षित होती आयी है। उनका स्पर्श अशुचि है, उनका संग अपवित्र है। निराशा के अंधकार में उनका जन्म होता है, उसी में उनकी निरन्तर स्थिति है। याद रखो निर्धन की कुटिया में ही भारतीय राष्ट्र बसता है। स्वामी जी व्यथित होकर कहते है कि ''मैंने भारत भ्रमण किया है और सर्वत्र आम जनता का भयावह दुख–दैन्य मैंने अपनी आँखों से देखा। वह सब देखकर मैं व्याकुल हो उठा हूँ। मेरी आँखों के आँसू रोके नहीं रूकते। इसी कारण जनसाधारण की मुक्ति का कोई उपाय ढूँढ निकालने के लिए मैं अब अमेरिका जा रहा हूँ।''[4]

पाश्चात्य देशों का भ्रमण करते हुए स्वामी जी ने राष्ट्रवाद का जो परिचय दिया है वह सराहनीय है। 11 सितम्बर 1893 के शिकागो धर्म संसद में जो विजय पताका लहरायी उससे स्वामी जी को बड़ी ख्याति मिली और उन्हें अमरिका के विभिन्न भागों में घूमने का अवसर मिला। कार्यक्रमों के दरम्यान उनसे बड़े ही उटपटांग प्रश्न पूछे जाते स्वामी जी विचलित हुए बिना उनके प्रश्नों के उत्तर बड़े ही सहज भाव से देते। हालांकि एक भारतीय होने के नाते उन्हें एक एक प्रश्न अन्दर तक प्रताड़ित कर जाता था एक बार स्वाजी जी ने महिला संबंधी एक प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप में पूछ लिया कि आपको हमारी महिलाओं की इतनी चिंता क्यों है?

राष्ट्र की दैनन्दिन जीवन का सबसे प्रमुख कारण स्वामी जी शिक्षा को मानते है। हम सभी जानते है कि हमारे लिए भारत का भविष्य शिक्षा पर निर्भर करता है। भगिनी निवेदिता यह कहते हुए आगे इसको विस्तार देते हुए कहती है– ''हम यह भी जानते है कि कार्यकारी बनाने के लिए इस शिक्षा को हर स्तर पर इसके निम्नतम उपयोग से लेकर उच्चतम तथा परम उदासीन श्रेणियों तक प्रसारित करना होगा। हमें तकनीकि शिक्षा चाहिए और उच्चतर शोध की भी जरूरत होगी। हमें नारियों के लिए शिक्षा की जरूरत होगी और पुरूषों के लिए भी। हमें भौतिक शिक्षा चाहिए और साथ ही साथ धार्मिक शिक्षा भी।''[5] संभवतः इन सभी से महत्वपूर्ण जन शिक्षा की जरूरत है और इसके लिए हमें स्वयं पर ही निर्भर करना होगा। स्वामी जी के प्रभाव का ही यह परिणाम है जो भगिनी निवेदिता ने ऐसे वाक्य प्रयोग किये। स्वयं विवेकानंद जी कहते है– ''हमें तकनीकी शिक्षा तथा उन सब चीजों की आवश्यकता है, जिनसे उद्योग–धन्धों का विकास हो, ताकि लोग नौकरी की तलाश में भटकना छोड़कर अपने लिए यथेष्ट उपार्जन कर सके और दुर्दिन के लिए कुछ बचाकर भी रख सकें।''[6]

इतने सारे प्रमाणों से यह प्रमाणित होता है कि स्वामी जी के अन्दर राष्ट्रवाद की भावना उच्च श्रेणी की थी। उनका फार्मूला धार्मिक राष्ट्रवाद का था तभी तो सी राजगोपालाचारी कहते हैं कि परतंत्र भारत को देखकर स्वामी जी का हृदय व्याकुल रहता था, परन्तु वह कभी भी यह नहीं चाहते थे कि स्वयं का और देशवासियों का मनोबल कम हो। इसे हमेशा वह बुलंद रखना चाहते थो, निराशा को दूर–दूर तक फटकने भी नहीं देते थे। संस्कृतियों के

ज्ञान से वह सब को गौरवान्वित करते थे। और भारत माता की उन्हें इतनी चिंता थी कि लोगों से वह उसकी सेवा को उकसाते थे। वह कहते है यह देखो, ''भारत माता धीरे–धीरे आँखे खोल रही है। वह कुछ ही देर सोयी थी। उठों, उसे जगाओं और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमण्डित करके भक्तिभाव से उसे उसके चिरंतन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दो।''[7]

आदि काल से हमारा भारतीय समाज उनके बंधनों में जकड़ा हुआ है। ये बंधन है–धार्मिक (जाति, सांस्कृतिक) आर्थिक, (उच्च वर्ग, निम्न वर्ग) और राजनीतिक (सत्ता पक्ष–विपक्ष)। निश्चित ही इस बंधन, इस जकड़न को तोड़ना असंभव है, परन्तु हमारी समस्या भी यही नहीं है हमारी वास्तविक समस्या है इस बंधन की आड़ में होने वाला खेल। भूख, भय, अवसर का अभाव, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक गैर बराबरी और हम फंसे है मीट खाओं, साग खाओं, धोती–कुर्ता, पायजामा–कुर्ता, पैंट–शर्ट, लम्बे बाल–छोटे बाल, शादी–विवाह और अन्य सामाजिक सरोकारों में। जबकि हमारा सरोकार होना चाहिए शिक्षा–दीक्षा, सामाजिक समस्या आदि से। व्यक्तिवाद में उलझा भारतीय समाज को समाजवाद का दर्शन चाहिए।

समाजवाद और इसके दर्शन को स्वामी जी के शब्दों में कुछ यूँ बयान किया जा सकता है ''जो सिद्धांत समाज की श्रेष्ठता की वेदी पर व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता की आहुति चाहता है उसे समाजवाद कहते है।''[8] व्यक्ति के सदा समाज के अधीन होने के कारण और विधि नियमों द्वारा बाध्य होकर अनिश्चित आत्म–त्याग के फलस्वरूप जो परिणाम होते है उन सबका हमारी मातृभूमि एक ज्वलंत उदाहरण है। इस देश में मनुष्यों का जन्म शास्त्रीय विधियों के अनुसार होता है वह जन्म भर निर्दिष्ट नियमों के अनुसार ही खान–पान किया करते है। वैवाहिक और अन्य कार्य भी उसी तरह किये जाते है और वे मरते भी है शास्त्रीय विधियों के अनुसार। यह अनुभव स्वामी जी ने श्री राम कृष्ण परमहंस के देवावसान व शिकागो की यात्रा से पूर्व देश भ्रमण कर प्राप्त किया। उन्होने पाया कि पीढ़ियों से लोग एक ही कार्य को नियमानुसार करते आ रहे है, परन्तु इसके अतिरिक्त यह परम्परा दुर्गुणों से भरा पड़ा है।

भारतीय प्रदेशों के भम्रण के क्रम में स्वामी जी को दीन–हीन दुखियों से साक्षात्कार हुआ। उन्होंने देश के प्रत्येक कोने में पसरे अकाल, भूख, भय रोगग्रस्त व्यक्ति एवं विकासरहित क्षेत्रों का दर्शन किया। उनके हृदय में पीड़ा हुई। सत्य की खोज में दर–दर जाने वाले स्वामी जी को अब सत्य का सामना हो रहा था। स्वामी जी कहते है ''जब उस देवता को जिसे हम अपने चारों और देख पाते है उस विराट की पूजा नहीं कर पाते, फिर हम अन्य व्यर्थ के देवताओं के पीछे क्यो पड़े? हमारे चारों तरफ जो लोग है सर्वप्रथम उन विराट की पूजा करो मानव और पशु–सभी हमारे देवता है और सबसे पहले हमें जिन देवताओं की पूजा करनी होगी, वे हैं हमारे अपने देशवासी।''[9] यह स्वामी जी का धार्मिक दर्शन भले ही हो, परंतु मैं इसे समाजिक दर्शन मानता हूँ। वास्तव में हमें उनकी पूजा, उनकी सेवा करनी चाहिए जो उपेक्षित है, सुविधा हीन है। स्वामी जी ने स्वयं को उनकी सेवा में लगभग और अपने शिष्यों को भी दीन–हीन की सेवा हेतु प्रशिक्षित किया। शायद यही वह महत्वपूर्ण कारण है जिसके चलते उन्होंने स्वयं को समाजवाद कहा है वे कहते हैं– "He was a socialist. He did not think socialism was perfect but be said, half a loaf is better than no bread."[10]

यह सत्य है कि हमारे भारतीय समाज में सब कुछ जन्म से मृत्यु तक शास्त्रीय विधियों के अनुसार होता है। स्वामी जी ने इसे अच्छा मानते हुए इसकी आलोचना में कहते है कि ''यदि केवल विधि–नियमानुसार जीवन–यापन ही उत्तमता का लक्षण हो, पीढ़ियों से आये हुए नियमों और रूढ़ियों का पालन ही सदाचार हो तो आप ही बतलाइये, वृक्ष से अधिक सदाचारी भला और कौन है, रेलगाड़ी की अपेक्षा अधिक भक्त तथा पवित्रतर साधु और कौन है? किसने पाषाण खण्ड को प्रकृति नियम का उल्लंघन करते देखा है, किसनें पशु को प्राकृतिक नियम का उल्लंघन करते देखा है, किसनें पशु को कभी पापाचार करते जाना है।''[11]

स्वामी जी की यह आलोचना निश्चित रूप से जागृत करता है। उन्होंने निंद्रा भंग करने वाला यह उदाहरण देकर यह बतलाने का प्रयास किया है कि समाज और दीन–हीन की सेवा केवल शास्त्रों अथवा धार्मिक नियमों के अनुसार ही नहीं होगा, बल्कि इससे इतर हमें इन बाधाओं को तोड़ कर कार्य करने की आवश्यकता है।

स्वामी जी ने जातिवाद का खुल कर विरोध किया, वह कहते हैं, ''जाति प्रथा तो वेदान्त धर्म के विरूद्ध है। जाति एक सामाजिक रूढ़ी है और हमारे सभी महान आचार्य उसे तोड़ने का प्रयत्न करते आये हैं। जाति केवल भारतवर्ष की राजनीतिक संस्थाओं से निकली हुई है वह एक परम्परागत व्यावसायिक संस्था है।''[12] किसी उपदेश की अपेक्षा यूरोप के साथ व्यावसायिक स्पर्धा ने जाति बंधन को अधिक तोड़ा है। धर्म में कोई जाति नहीं होती, जाति तो केवल एक सामाजिक रूढ़ी है। वास्तव में यह व्यवस्था मानव निर्मित है। प्रकृति यहाँ शून्य एवं निर्दोष है।

अपने स्वार्थ सिद्धि हेतु ऐसी व्यवस्था की गई। कर्म प्रधान इस भारतवर्ष में कर्म के अनुसार ही जाति निर्धारित होती थी, परन्तु जातिवाद ने हमारे समाज में इतना गहरा पैठ बना लिया कि अब जाति के आधार पर ही उसका कर्म तथा उसकी समाजिक स्थिति निर्धारित होती है इसलिए स्वामी जी के विचारधारा के आधार पर यह कहा जाता है कि "He hoped India would grow into a casteless and classless with high spiritual ideas before it.k~ He said, I see in my mind"s eye the future perfect India rising out of this chaos and strife glorious and invisible, with Vedanta brain and Islam body."[13]

स्वामी जी शुद्रों को चोटी पर देखना चाहते थे, वे रसिया (रूस) और चाईना से अलग शान्तिपूर्ण क्रान्ति चाहते थे और भारत वर्ष के उच्च वर्ग को संबोधित करते हुए वह कहते थे कि बगैर किसी हो–हल्ला के बिल्कुल ही शांन्तिपूर्ण तरीके से एक दिन यह (Power) शक्ति Working people (निम्नवर्ग) के पास चली जायेगी।

निष्कर्ष

इतने उच्च और महान विचारों वाले स्वामी विवेकानन्द की इस धरती (भारतवर्ष) पर यदि समाज का एक भी व्यक्ति अथवा समाज का कोई भी पक्ष विकास से अप्रकाशित होता है तो इसके लिए स्वामी जी नहीं बल्कि उनकी नीतियों एवं सिद्धांतो में विश्वास रखने वाले जिम्मेवार होंगे।

संदर्भ सूची

1. स्वामी, अपूर्वानंद (1975) *स्वामी विवेकानन्द संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 6।
2. स्वामी, विवेकानंद (1993) *हे भारत, उठो, जागो,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 12।
3. स्वामी, विवेकानंद (2001) *हमारी शिक्षा,* रामकृष्ण मठ, नागपुर पृ. 16।
4. स्वामी, विवेकानंद (2012) *प्राच्य और पाश्चात्य,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 21।
5. स्वामी, विवेकानंद (2011) *भारत जागरण,* रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली, पृ. 42।
6. स्वामी, विवेकानंद (2012) *मेरा भारत अमर भारत,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 18।
7. स्वामी, विदेहात्मानंद (2012) *स्वामी विवेकानंद और उनका अवदान,* अद्वैत आश्रम, कोलकता, पृ. 56।
8. स्वामी, वीरेश्वरानंद (1982) *मातृभूमि के प्रति हमारा कर्तव्य,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 40।
9. स्वामी, ब्रह्मस्थानंद (1970) *विवेकानंद राष्ट्र का आह्वान,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 67।
10. Letters of Swami Vivekananda, Advaita Ashram Calcutta, p. 47, 1989.
11. स्वामी, विवेकानंद (1988) *भारत का भविष्य,* रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृ. 99।
12. स्वामी, विवेकानंद (1963) *विवेकानंद साहित्य,* (खण्ड–1) अद्वैत आश्रम, कोलकता, पृ. 36।
13. Swami, Vivekananda (1963) *Caste, Culture and Sociausm*, R.K.M., Nagpur, p. 42.

****